Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मवाद की आधुनिक में उपयोगिता

इन्दल
पूर्व शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग,
बी0आर0डी0बी0डी0पी0जी0 कॉलेज आश्रम बरहज देवरिया,
उत्तर प्रदेश,भारत।

शोध सारांश– कर्मयोगी अपनी जीवन यात्रा के समस्त संघर्षों में अपने भीतर से प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त करता है। वह दुष्प्रकृति वाले लोगों की द्वेषपूर्ण आलोचना से विचलित नहीं होता। गीता का कर्म योग यह शिक्षा देता है कि व्यक्ति को जीवन की विषय परिस्थितियों से कभी पलायन नहीं करना चाहिए बल्कि समस्त चुनौतियों को स्वीकार करके डटकर उनका सामना कर जय–पराजय, लाभ–हानि तथा यश–अपयश की चिन्ता परमात्मा पर छोड़ देना चाहिए। मनुष्य को अपने कर्मों के अनुसार ही फल की प्राप्ति होती है।

मुख्य शब्द– श्रीमद्भगवद्गीता, कर्मवाद, जीवन, यश, अपयश, मनुष्य, दर्शन, शक्ति।

श्रीमद्भगवद्गीता मानव कल्याण के लिए श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इस जगत् में ऐसी कोई भी समस्या नहीं जिसका समुचित समाधान गीता में न बताया गया हो। जब भ्रान्ति और भटकन मन को जकड़कर दुर्बल और असहाय बना रहे हो, तब अधीर और सन्त्रस्त मन के ब्यामोह को दूर करने के लिए गीता का प्रकाश मित्र और गुरु की भाँति परम सहायक सिद्ध होता है। गीता का सिद्धान्त प्राणि मात्र के कल्याण का उद्घोष है। यह न केवल आध्यात्मिक साधकों का मार्गदर्शन करती है अपितु इस लोक में उत्तम जीवन जीने तथा सुख और शान्ति प्राप्त करने का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

आज भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण,भौतिकवाद के कारण परिवर्तन और प्रगति की है पर व्यक्ति विश्व के विशाल एवं विस्तृत सन्दर्भ में तथा उत्तम आदर्शों की परिपूर्ति की दिशा में भटक गया है तथा वह समाज का व अपना विध्वंसक शत्रु बन रहा है। अहंकार, स्वार्थ, घृणा, विद्वेष तथा विषाद से भर कर मानव आत्मघाती हो गया है। इस स्थिति में मानव अपने नियन्त्रण से बाहर हो गया परिस्थितियों में अपना शान्त जीवन कैसे व्यतीत कर सकता है, इसके लिए विचारधारा, सोचने और कर्म करने की विधि की आवश्यकता है।

गीता मात्र तत्वज्ञान नहीं है यह व्यवहारिक दर्शन है। मानव को केन्द्र में रखकर मानव के सर्वतोमुखी कल्याण के उपायों का यह व्यावहारिक रूप प्रस्तुत करती है।

गीता का मुख्य प्रतिपाध कर्मयोग है। जीवन में निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देने वाले एक मात्र गुरु श्री कृष्ण ने अनेक बार कर्मयोग को ही योग कहकर तथा कर्मयोगी को ही योगी कह कर इस तथ्य को स्पष्ट किया है। कर्मयोग में निष्कामभाव होता है तथा उससे समत्वबुद्धि प्राप्त होती है। कर्मयोगी स्वान्तः सुखाय, अपनी अन्तरात्मका की शुद्धि एवं शान्ति के लिए अपनी परम सन्तुष्टि के लिए कर्म करता है। श्री कृष्ण ने कर्मयोग की स्थापना ज्ञानयोग के प्रकाश में की है। उन्होंने अनेक उक्तियों से निष्काम भाव से स्वधर्म–पालन करने पर बल दिया है। निष्काम भाव से अर्थात् अनासक्त होकर अथवा फल में आसक्ति को छोड़कर कर्म करने से चित्त शुद्धि हो जाती है तथा चित्त शुद्धि होने पर आत्मज्ञान का उदय हो जाता है। कर्मयोगी निष्काम, कर्म के अभ्यास से स्थिति–प्रज्ञ अवस्था को प्राप्त करके जीवन मुक्त हो जाता है।

मानव जीवन सीधी रेखा के समान सरल या समतल नहीं है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में सुख–दुःख, जय–पराजय, लाभ–हानि, उतार–चढ़ाव आते रहते हैं। अविवेकी मनुष्य विषम परिस्थितियों में या संकट आने पर परेशान होकर घुटने टेक देता है तथा परास्त होकर कर्तव्य–कर्म से पलायन कर देता है। समुचित पुरूषार्थ न करने के कारण वह दुर्दशा को प्राप्त हो जाता है। विवेकी पुरूष साहसपूर्वक उठ खड़ा होता है और चुनौती को स्वीकार कर पूर्ण शक्ति से परिस्थितियों का सामना करता है। कर्मवीर के लिए हार भी जीत के समान होती है। मनुष्य के लिए कर्म करना परमात्मा की आज्ञा का पालन करना है। कर्मयोगी का धर्म है कि वह परिस्थितियों से कदापि पलायन न करें बल्कि डटकर उससे मुकाबला करे।

''फल पर विचार न करके मनुष्य को निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के किये गये कर्म मनुष्य को बन्धन में नहीं बांधते।[1] प्रत्येक मनुष्य कुछ विशेष परिस्थितियों में कार्य करता है तथा सभी के कार्यक्षेत्र और परिस्थितियाँ अलग–अलग होती है। मनुष्य के शक्ति और सामर्थ्य भी सीमित होते हैं। वह केवल कार्य कर सकता है फल के विषय में निश्चित नहीं हो सकता क्योंकि फल मनुष्य की इच्छा के अधीन नहीं होता है। मनुष्य भाग्य के सहारे भी निष्क्रिय होकर नहीं बैठ सकता क्योंकि भाग्य का ज्ञान सम्भव नहीं होता। जो मनुष्य कर्म करने से बचना चाहता है वह निश्चित रूप से अक्षम है। ईशोपनिषद् का मंत्र भी इसी बात की ओर इंगित करता है–

''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।''[2]

मनुष्य कर्म से पूर्व लक्ष्य निर्धारित करते हुए योजना बनाता है किन्तु उसे अपनी योजना के अनुसार लक्ष्य पूर्ति के लिए कर्म करते हुए भी फल प्राप्ति को मुख्य उद्देश्य नहीं बनाना चाहिए। फलासक्ति से प्रेरित होकर कर्म करने वाला मनुष्य कामना के अनुकूल फल प्राप्ति कर अति प्रसन्न और प्रतिकूल फल प्राप्ति पर अति व्याकुल हो जाता है। वास्तव में फल की आसक्ति होने पर मनुष्य कर्म की ओर स्वार्थ–दृष्टि से देखता है। फलासक्ति रहित अर्थात् निष्काम कर्म मनुष्य का अपना कल्याण तथा जगत् का हित करता है–

''आत्मनो मोक्षार्थ जगत् हिताय च, स्वान्तः सुखाय परहिताय च।''

कर्मयोग की साधना में मनुष्य के लिए कर्मफल की आसक्ति के त्याग का अभ्यास करना नितान्त आवश्यक है। मनुष्य को भौतिक वस्तुओं और व्यक्तियों को नश्वर समझकर उनके प्रति मोह का त्याग कर देना चाहिए। कर्मफल में आसक्ति का त्याग करने पर मनुष्य आत्म कल्याण एवं समाज हित के लिए कर्म करते हुए सदा एक समान रह सकता है। कर्म को सच्चे भाव से कर लेना अपने में एक गहरा सुख होता है तथा अपने कर्म में निरत रहना अपना धर्म है। महाभारत में कहा गया है–

स्वकर्मत्यजतो ब्रहन्नधर्म इह दृश्यते।

स्वकर्मनिरतोयस्तु सधर्म इति निश्चयः।।[3]

कर्मफल की आसक्ति छोड़ना अथवा निष्काम होना कर्मयोग की साधना का मूलाधार है। मोह का त्याग गीता का प्रमुख आधार है। आसक्ति को छोड़कर कर्म की सफलता या विफलता अथवा पूर्णता और अपूर्णता में समबुद्धि रहकर योग द्वारा परमात्मा को स्थित होकर व्यक्ति को कर्म करना चाहिए। यही समत्व ही योग कहलाता है–

''समत्वं योग उच्यते।''[4]

कर्मयोगी अध्यात्म चेतना से मुक्त होकर एवं परमात्मा में लिप्त होकर एवं परमात्मा में स्थित होकर समस्त सृष्टि के साथ समरस हो जाता है। वह ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त होकर भी लोक–संग्रह के लिए कर्म करता है तथा अपने उदाहरण से दूसरों को भी कर्म करने की प्रेरणा देता है। कर्मयोगी भक्ति भाव से परिपूर्ण होकर अपने समस्त कर्म को ईश्वर को अर्पण कर देता है। गीता में श्रीकृष्ण ने प्रत्येक स्थिति में स्वधर्म पालनकरने पर तथा मानवीय चेतना के उर्ध्वगामी, प्रक्रिया द्वारा निरन्तर विकास पर बल दिया है। विषय भोगों में आसक्त होकर इन्द्रिय–तृप्ति के भिन्न स्तर पर जीने वाला मनुष्य कभी जीवन के ऊँचे स्तर को प्राप्त नहीं कर सकता। स्वार्थभाव एवं संकीर्णता से ऊपर उठकर परमार्थ भाव एवं उदारता से निष्काम–कर्म करना यज्ञ है। कर्म करने से कार्य दक्षता आती है एवं आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।

मानव–स्वभाव के तीन प्रमुख पक्ष होते हैं। 1– जानना अथवा ज्ञापोपर्जन करना (बुद्धि पक्ष) दूसरा भावों अथवा उद्योगों का अनुभव करना (ह्रदय पक्ष) और तीसरा क्रियाशील होना (कर्मपक्ष) यद्यपि ये तीनों प्रत्येक मानव के स्वभाव के अन्तर्गत है तथापि सभी के स्वभाव मात्र भेद के कारण भिन्न–भिन्न होते है। इसके अनुरूप गीता में भी परमात्मा की प्राप्ति के तीन मार्ग है– ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग एवं कर्म मार्ग। गीता में कहा गया है कि मनुष्य न तो कर्मों के अनारम्भ से (न करने से) निष्कर्मता को प्राप्त होता है और न कर्मों को त्याग देने से सिद्धि को प्राप्त करता है–

न कर्मणामनारम्भार्न्तष्कर्म्य पुरुषोऽश्नुते।

न च संन्यसनादेव सिद्धि समधि गच्छति।।[5]

कर्मों का आरम्भ न करने पर अर्थात् कर्म न करने पर निष्कर्मता प्राप्त नहीं होती। कर्मों का आरम्भ करने पर अर्थात् कर्म करने पर ही अन्त में निष्कर्मता प्राप्त होती है। निष्काम कर्म करने से अर्थात् आसक्ति एवं फल की

कामना छोड़कर कर्म करने से कर्मबन्धन से मुक्ति की स्थिति प्राप्त होती है। निष्काम होकर कर्म करने से मनुष्य का चित्त निर्विकार एवं निर्मल हो जाता है तथा शुद्ध चित्त में ज्ञान का प्रादुर्भाव स्वयं हो जाता है। इस प्रकार कर्मयोगी को कर्म निष्ठा के साथ ही ज्ञानी जन की ज्ञान निष्ठा भी प्राप्त हो जाती है।

संघर्ष जीवन का अंग है। पशु–पक्षियों पौधों वनस्पतियों को भी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करना पड़ता होता है। मनुष्य को केवल अपने अस्तित्व के लिए ही नहीं बल्कि जीवन मूल्यों के लिए भी संघर्ष करना होता है। मनुष्य अपने भीतर दैवी वृत्तियों से आसुरी वृत्तियों के साथ संघर्ष करके आत्मानुशासन एवं आत्मविकास की प्रक्रिया में तीव्र प्रगति कर सकता है।

कर्मयोगी अपनी जीवन यात्रा के समस्त संघर्षों में अपने भीतर से प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त करता है। वह दुष्प्रकृति वाले लोगों की द्वेषपूर्ण आलोचना से विचलित नहीं होता। गीता का कर्म योग यह शिक्षा देता है कि व्यक्ति को जीवन की विषय परिस्थितियों से कभी पलायन नहीं करना चाहिए बल्कि समस्त चुनौतियों को स्वीकार करके डटकर उनका सामना कर जय–पराजय, लाभ–हानि तथा यश–अपयश की चिन्ता परमात्मा पर छोड़ देना चाहिए। मनुष्य को अपने कर्मों के अनुसार ही फल की प्राप्ति होती है।

आज समाज में चारों तरफ आपा, धापी, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, आतंकवाद के साथ अनेक सामाजिक विसंगतियाँ फैली है। मनुष्य को केवल अपना स्वार्थ दिखायी दे रहा है। भौतिकतावाद के इस युग में मानव का चारित्रिक क्षरण तेजी से हो रहा है। इस कारण वह कर्तव्य और अकर्तव्य कर्म का सही निर्णय नहीं ले पा रहा है। गीता के उपदेश व ज्ञान से उसे एक नयी दिशा अवश्य मिल सकती है।

सन्दर्भ–सूची

1. श्रीमद् भगवद्गीता–2/47
2. ईशोपनिषद–2
3. महाभारत
4. श्रीमद् भगवद्गीता–2/48
5. श्रीमद् भगवद्गीता–3/4